देखा कबीरा रोया

हर वर्ष की भांति होली अब फिर आ गई है, लोग फिर एक-दूसरे पर रंग डालेंगे। रंग की जगह-जगह दुकानें खुलेंगे करोड़ों रूपयों का रंग बिकेगा और करोड़ों लोग इस उत्सव को मनायेंगे। सरकार की ओर से भी इसे मनाने के लिए छुट्टी होगी। एक दिन तो ऐसा भी आयेगा जब बस वाले भी काफ़ी समय छुट्टी करेंगे परन्तु समझ नहीं आता कि इस दिन होता तो है हुडदंग और लोग इसे नाम देते हैं - होली। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कि रंगी को ना-रंगी नाम देना या चलती को गाड़ी कहना! यदि कबीर साहिब के दिनों में यह त्योहर होता होगा तो वे भी इसे देख कर अवश्य रोये होंगे!

फिर, लोग कहते हैं कि- हम आज होली मनायेंगे! मनाया तो वास्तव में उसे जाता है जो रूठा हुआ हो। परन्तु लोग हर आने-जाने वाले पर रंग डाल देते हैं जिससे कई लोग रूठ जाते हैं, नाराज हो जाते हैं! तो कैसी आश्चर्य की बात है कि जिससे लोग बिगड़ जाते हैं, उसे यह मनाना कहते हैं! यह भी कैसा मनाना है जिसके कारण सरकार घोड़े सवार और पैदल पुलिस तैनात करती है और समाचार पत्रों में घोषणा करती है कि यदि कोई ज़बरदस्ती किसी पर रंग डालेगा तो उसके विरुद्ध सरकार कार्यवाही करेगी!

भड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि लोग कहते हैं कि शिक्षा का प्रचार हो रहा है ओर शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ रही है। पढ़े-लिखे लोगों को तो मनाने शब्द का अर्थ मालूम होना चाहिए। करोड़ों रुपयों का रंग लोगों के कपड़ों पर डाल कर राष्ट्र की बहुमूल्य सम्पत्ति को नाकार किया जाता है। जबकि देश में कितने ही लोग निर्धनता के कारण निर्वस्त्र हैं, तब इस प्रकार वस्त्रों को बिगाड़ना-भला मनाने शब्द का यह अर्थ कैसे हुआ? आने-जाने वाले पर गुब्बारा मारना तो गोया अपने मन का गुब्बार निकालने के समान हुआ, इसमें मनाने का तो भाव ही नहीं है। यदि गंवाना ही मनाना है, तब तो इन नए शब्दार्थ और शब्दकोष की शिक्षा ही अलग है।

होली शब्द का तो उच्चारण है - हो + ली अर्थात् जो बात हो- ली अब उसका चिन्तन न किया जाय। बीती को बिसार दें आगे की सुधि लें - इसी भाव का वाचक है होली। परन्तु इस दिन तो कई लोग बीती हुई बात को याद करके बदला लेते हुए खूब एक-दूसरे के मुख पर बे-ढंग रीति से रंग मल देते, इुड़दंग मचाते हुए अपमानित करते तथा न करने योग्य व्यवहार करते हैं, तब भला इसका नाम होली कैसे हुआ?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि हो + ली का रंग के साथ क्यों सम्बन्ध? वास्तव में तो ज्ञान रंग अथवा सत्संग ही का रंग ऐसा रंग है जिससे मनुष्य बीती को बिसार आगे के लिए अपने कर्मो को सुधार सकता है और हुई बात को मन से निकल कर अब से अपने सम्बन्धी एवं परिचित व्यक्तियों से मन का नाता प्रेममय बना सकता है। परन्तु तब भी कैसी अटपटी बात है कि ज्ञान का अथवा सत्संग का रंग डालने की बजाय लोग डालते हैं स्थूल रंग! मन को केसरिये या गुलाल में रंगने की बजाय वस्त्रों को रंगते हैं और कहते हैं होली अर्थात् रंग लिया!

उत्सव शब्द तो ऐसे अवसर के लिए ही प्रयोग होता है जिससे मनुष्य की खुशी अथवा उसका उत्साह बढ़े। जिस कार्य को करने के बाद मनुष्य को यह पश्चात्ताप हो कि फलाँ व्यक्ति उससे नाराज हो गया होगा अथवा कि इतना रंग, इतने वस्त्र या इतना समय बेकार गया- उसे उत्सव कहना भी तो भाषा की धज्जियाँ उड़ाना ही हुआ। भांग के गुलगुले खाकर स्वयं को भूल जान ही यदि होली ही कहेंगे। कबीर जी कहते हें-

पत्थर पूजे हरि मिलें, लो मैं पूजूं पहाड़
ताते तो चाकी भली, पीस खाये संसार!

से पत्थर तो पूजने से हरि नहीं मिलते, उसी प्रकार वस्त्रों पर यह स्थूल रंग डालने से मंगल मिलन नहीं होता। सच्चा मंगल मिलन तो प्रभु-मिलन से होता है और प्रभु मिलन से आत्मा को ज्ञान-रंग में रंगने से होता है।

ओम् शान्ति

- ब्रह्माकुमारीज् वार्ता फिचर्स
www.bkvarta.com